ओ३म्

दयानन्द महाकाव्य

अर्थात्

दयानन्द चरित मानस

चौपाई

बन्दौं प्रथम अनीह अनामा ।
जासु भजे सुधरें सब कामा ॥१॥
देश काल वस्तुकृत भेदा ।
त्रिबिध भेदकृत नहिं परिछेदा ॥२॥
मुनि मुनीश जहं पार न पावा ।
मम मति अल्प विषय किमि आवा ॥३॥
कोटि कोटि नभ मंडल तारे ।
कौन गणे नहीं जायं विचारे ॥४॥

निगमागम जिहिं पार न पाया ।
अगम अगाध प्रभु की माया ॥५॥
अनक बेर उपजहिं ब्रह्मंडा ।
पुनः लीन हैं ब्रह्म अखंडा ॥६॥
निस दिन सम परवाह अनादि ।
उपजे विनसैं कारय सादि ॥७॥
अन्य चिदाचिद ब्रह्म विभूती ।
प्राकृत माया जगत् प्रसूती ॥८॥
सो प्रभु हो दयाल उर मेरे ।
वरणों जगहित चरित घनेरे ॥९॥
जाहि पढ़ैं जग में नरनारी ।
होहिं सुशील सदा व्रत धारी ॥१०॥
पावन पुरुष अमित गुण जाके ।
वरणों वेद विहित गुण ताके ॥११॥
ब्रह्मचर्य्य जहं होइ अखंडा ।

मानै सकल लोक ब्रहमंडा ॥१२॥
जो अस पुरुष भया जग ज्ञानी ।
निगमागम महिमा जहं जानी ॥१३॥
कहों तासु के चरित पुनीता ।
मनहुं पुराण भागवत गीता ॥१४॥
विषद करों निज मति अनुसारी ।
कोविद जासु लहें नहिं पारी ॥१५॥

दो०—देश काठियाबाड़ में,
मुरबी प्रान्त मझार ।
मुक्त पुरुष जन्मा पुनह,
दयानन्द तनु धार ॥ १ ॥

चौ०—दयादृष्टि जिन संत उबारे ।
दुष्ट दमन कीने तिन सारे ॥१॥
निगमागम कर खड्ग सुहाया ।
परशुराम जनु भूसुर आया ॥२॥

ब्रह्म तनू पा उतरेउ धीरा ।

मनहुं शरीर धरा रस वीरा ॥३॥

आजानु भुज दण्ड लंबाया ।

मनहुं भीम तनु फिर धर आया ॥४॥

वेद विरोधी वादी जेते ।

तर्क खड्ग से छेदे तेते ॥५॥

मसी महम्मद के अनुयायी ।

तर्क खड्ग पा गए पलाई ॥६॥

मुनि गौतम जनु आय विराजा ।

तर्क समाज पुनह जग साजा ॥७॥

शाक्यसिंह गौतम जनु आया ।

दैविक दैहिक ताप मिटाया ॥८॥

दै निर्वान हरेउ भव रोगा ।

माया मोह जनित सब रोगा ॥९॥

ग्राम नगर भये साधु समाजा ।

जनु सुराज पा सुधरेउ काजा ॥१०॥

दो०—सतयुग त्रेता में भये,
त्राता पुरुष अनेक।
कलि महिमा लखि काल की,
दयानन्द भयो एक ॥२॥

चौ०-भये बहुत जग में संन्यासी।
मुनि सम वेश सदा बनवासी ॥१॥
भूमिभार तदपि बहु भारा।
नानाविध नहिं जाय बिचारा ॥२॥
अति विपत्ति सही भारतवासी।
यवन धाम भए मथुरा कासी ॥३॥
भए भारत में पंथ अनेका।
वर्षा ऋतु जिमि जामहं भेका ॥४॥
तव शंकर शंकर तनु धारा।
पा माया जिमि कृष्ण पधारा ॥५॥

धर्म ग्लानि होत जग जब ही ।
मुक्त पुरुष जन्में भुवि तब ही ॥६॥
युग युग की रीति यहि भाखी ।
कर्म रेख विधि ने लिख राखी ॥७॥
त्रेता युग में राम प्रधाना ।
भयेउ असुरदल दलन निधाना ॥८॥
युग द्वापर के अन्त मझारी ।
काया कृष्ण मुरारी धारी ॥९॥
कंसादिक को कर संहारा ।
पुनह सनातन धर्म प्रचारा ॥१०॥
युग युगादि की भई यह रीती
मुनिजन कथी कथा सब बीती ॥११॥
शुद्ध सनातन ब्रह्म अनादि ।
सो उतरेउ नर तनु धर सादि ॥१२॥
मुनि मन में यह मिथ्या भाखा ।

वेदधर्म तज कर लिख राखा ॥१३॥
अज अविनाशी वेद बखाने ।
ईश्वर का अवतार न माने ॥१४॥

दो०—अंबाशंकर गृह विषय,
उतरेउ शंकरमूल ।
शिक्षा दी जिन धर्म की,
वेद धर्म अनुकूल ॥३॥

चौ०—नामकरण की रीती कीनी ।
शङ्करान्त पद अभिधा दीनी ॥१॥
मूल मूल में मूल समाया ।
अक्षयवट जनु देव लगाया ॥२॥
दयानन्द बट बीज समाना ।
समय पाय बन गयो बट धाना ॥३॥
कल्पतरु जनु तज त्रि दिशाला ।
दयानन्द भयो वृक्ष विशाला ॥४॥

भारतजन आतप के मारे।
दूर करें त्रय ताप विचारे ॥५॥
लोकवासना जो जन जन की।
पूरण करे कल्पतरु मन की ॥६॥

दो०—शंकर से कंकर भया,
पड़ी भरम की भूल।
पुन शंकर शंकर करन,
जन्मा शंकरमूल ॥ ४ ॥

चौ०—शिव शंभु ने वेद बखाना।
ताको जड़ जब जड़ मति जाना ॥१॥
तब जन्मा शंकर तनु पाके।
दूर किया भ्रम तत्व बताके ॥२॥
जन्म बीज मुनि ने यह भाखा।
दयानन्द मुख से सुन राखा ॥३॥
अष्टादश विक्रम शत बीते।

त्रिंशत् षट पुन भये अतीते ॥४॥
गंग भगीरथ शीतल धारा ।
मेला कुंभ प्रचार अपारा ॥५॥
निज श्रवणी गाथा सुन नीकी ।
मिथ्या मती मिटी सब जीकी ॥६॥

दो०—नामकरण से अष्टमे,
उपनाया दयानन्द ।
मनहुं विधाता ने रचा
मंडल मंडन चन्द ॥ ५ ॥

चौ०—वेदविहित विधि वेदी संमारी ।
ऋत्विगादि मिल गावहं चारी ॥१॥
वेदध्वनि नभ पूरण कीनो ।
मनहुं वाग लय को गह लीनो ॥२॥
देव पितर अरु ऋषि ऋण भारी ।
दूर करन हित भयो ब्रह्मचारी ॥३॥

तीन तार पुन आश्रम तीनो।
दयानन्द षट ग्रह गह लीनो ॥४॥
शुभ्र तनू पर शोभित ऐसे।
हिमगिरि शिखर गंग गति जैसे ॥५॥
बक्र रूप हो इम है आया।
मनहुं व्याल व्यापी शिव काया ॥६॥
ब्रह्मसूत से ब्रह्म बंधाया।
मनहुं ब्रह्म तनु व्यापी माया ॥७॥
विशद भया पुन सूतकपासु।
मधुर ज्ञान गुणमय फल जासु ॥८॥
मनहुं विराट सूत धर माया ॥
आदि सर्ग जग सर्ग उपाया ॥९॥
तार षटक गल सोहें ऐसे।
शमदमादि षट संपत जैसे ॥१०॥
छेद केश शिर सोहत ऐसे।

मायातीत मुनीवर जैसे ॥११॥
मनहुं ब्रह्म भयो सर्ग विहीना ।
निरविशेष निर्गुण गुण हीना ॥१२॥
निर्मल तनु सोहे ब्रह्मचारी ।
जिमि माया तजकर संसारी ॥१३॥
भया सुखी पद पा निर्वाना ।
गौतम बुद्ध तजे जनु माना ॥१४॥
तिमि दयानन्द ब्रह्म पद पाया ।
तजी मोहमय मिथ्या माया ॥१५॥
ब्रह्मचर्य्य को दे उपदेशू ।
गुरु हरे तिहिं सकल कलेशू ॥१६॥
पाँच कलेश हरे गुरु ऐसे ।
ऊषर तृण जामे नहिं जैसे ॥१७॥
ईक्षण श्रवण मनोरथ जन के ।
विषय दोष काटे तन मन के ॥१८॥

कामी कामना के परकारा ।
तजो गुरु कहे बारंबारा ॥१६॥
तैल अभ्यंग न मरदन करना ।
काम कामिनी ध्यान न धरना ॥२०॥
कटु तीक्ष्ण भोजन को त्यागो ।
अहि विष सम विषयन से भागो ॥२१॥
गंध सुगंध न अंग लगाना ।
नृत्य गीत में भूल न जाना ॥२२॥
मादक द्रव्य तजो तुम ऐसे ।
परीब्राट जग संपत जैसे ॥२३॥
अवकीरणी इष्टि से डरना ।
जिमि जन कामी चहे न मरना ॥२४॥
याविध का संयम करे जोई ।
ब्रह्मचर्य को धारे सोई ॥२५॥
गुरुतल्पग और ब्राह्मण हंता ।

इन सम अवकीरणी कहें संता ॥२६॥
दिवा स्वप्न विगलापन वादू ।
करो न मिथ्या वाद विवादू ॥२७॥
या विध दीक्षा दे गुरु देवा ।
कहा ब्रह्म पद अगम अभेवा ॥२८॥
कछुक काल बीते ब्रह्मचारी ।
वैदिकपथ की गति मति धारी ॥२९॥

दो०—दयानन्द बटुरूप में,
आया ऋतु बसंत ।
मनहुं विधाता ने किया,
कलु काल का अंत ॥ ६॥

चौ०—तब आयो ऋतुराज वसंता ।
उत्तरदिक भयो हिम परिहंता ॥१॥
विटप विपन सब फूलन लागा ।
जनु भारत अब भया सुभागा ॥२॥

हिमगिरि हिम गरने अस लागा।
जिमि क्षण२ जन क्षरे अभागा ॥३॥
गर गर हिम वहने लगा पानी।
जिमि मलेच्छ कुल की भई हानी ॥४॥
उदित अगस्त शीत अस बीता।
विपद समय जनु भया अतीता ॥५॥
मौल मौर अंबन के सोहे।
दयानन्द क्षण क्षण मन मोहे ॥६॥
घट घट नीर बाढ गईं सरिता।
जगा दैव भारत दुःख हरता ॥७॥
नर नारी तनु उपजेउ ओजा।
उदय भयो सरपंच मनोजा ॥८॥
मोह उचाटन करने लागा।
जन मन ध्यान ईश से भागा ॥९॥
अचल समाधि लगी शिव शंभु।

ध्यान धरा जगदीश स्वयंभु ॥१०॥

पारवती तव मन्मथ प्रेरा ।

ऋतूराज का जो बड़ चेरा ॥११॥

मन्द सुगन्ध समीरण चाले ।

अचल हिमाचल सम जन हाले ॥१२॥

मोह मदन मन में भा भारी ।

कांप उठे सगरे नर नारी ॥१३॥

शम्भु जगा मन में भया क्षोभा ।

जनु कुबेर कौड़ी पर लोभा ॥१४॥

ध्यान खुला देखीं बहु बाला ।

गर्व मेनका का जिन टाला ॥१५॥

कर पयोज कंकण अस बाजे ।

मनहुं मनोज विजय धुन गाजे ॥१६॥

पद सरोज शुभ गुलफ सुहाये ।

जनु मनोज सरसिज विकसाये ॥१७॥

नख शिख लों ऐसे तनु सोहे ।
जनु मनोज धर मूरत मोहे ॥१८॥

शिव शंभु जब नयन उघारे ।
व्याप गई प्रमदा मद सारे ॥१९॥

मनहुं मोहनी तनु धर आया ।
व्यापी पुनह विष्णु की माया ॥२०॥

पुनः गरल प्रमदा विष व्यापा ।
शिव तनु घोर भया परितापा ॥२१॥

ब्रह्मचर्य्य शिव का भया भंगा ।
मार मार शिव कीन अनंगा ॥२२॥

गाथ पुराणिक की दे साखी ।
मुनिजन कथा मनोरम भाखी ॥२३॥

जामें वृषभ केतु शिव भूला ।
तामें दृढ़व्रती शंकरमूला ॥२४॥

शतबसन्त पुन सहस अनंगा ।

ब्रह्मचर्य्य जस करैं न भंगा ॥२५॥
सो अस पुरुष दयानन्द स्वामी ।
जिंहि मन मन्मथ किया न कामी ॥२६॥
विरल पुरुष अस जननी जाये ॥
पंच बाण जिहिं नाहिं सताये ॥२७॥

दो०—ऋतुवसन्त कृष्णातिथी ।
नाम त्रयोदशि शोध ॥
शिव अर्चन को देखकर ।
भया दयानन्द बोध ॥७॥

चौ०—शिवअर्चन के दिन नियराये ।
नरनारी मन सुन उमगाये ॥१॥
रात्रि जाग्रण करें जिज्ञासु ।
जड़ शिव अर्चन के अभिलासु ॥२॥
शिव त्रयोदशी उत्सव भारा ।

शैव धर्म जिहिं करत प्रचारा ॥३॥
भुक्त मुक्त शैवन की काशी ।
जहां रहें शंभु अविनाशी ॥४॥
काशी मरण मुक्ति बतलावें ।
शिवपुराण की शाख सुनावें ॥५॥
तारक मंतर को दे माना ।
कहें शैव दे मान महाना ॥६॥
बामन विष्णु भागवत गीता ।
काशीपुरी तज भये अतीता ॥७॥
जटा मुकुट शिर गंग विराजी ।
तां शिव ने यह नगरी साजी ॥८॥
काशीतल शीतल वहे गंगा ।
नरनारी मन सहित उमंगा ॥९॥
मन्दिर कलश कखाश लजावें ।
नित नूतन शोभा दिखलावें ॥१०॥

उच्च शिखर सौधन की शोभा ।
निरख निरख नहिं कस मन लोभा ॥११॥
हिम गिरि सम अति उच्च अटारी ।
रविकर निकर छवि जिन हारी ॥१२॥
शुभ्र शिलामय घाट विशाला ।
मनहुं गंग गल मणिमय माला ॥१३॥
हर हर धुन चहुं दिक जन करते ।
जनु मलेच्छ प्रभुता अभि हरते॥१४॥
हर हर कर सेवाजी जीता ।
मुगल भये हर से भयभीता ॥१५॥
हर हर कर हरते धन चोरा ।
निश दिन पाप करें अति घोरा ॥१६॥
हर हर से शंभु अविनाशी ।
काटे योनि लाख चौरासी ॥१७॥
या उक्ति पर धर निज आशा ।

अंतकाल करं काशी वासा ॥१८॥

काशी मरण से भाखें मुक्ति ।

यामें अन्य नहिं कोउ युक्ति ॥१९॥

हर यह नाम पुराणिक गाया ।

देखो अजब प्रभु की माया ॥२०॥

ऋग् यजु साम अथर्वण माहीं ।

हर यह नाम ईश को नाहीं ॥२१॥

तदपि काशी में हर की पूजा ।

इसे छांड़ कोउ भजत न दूजा ॥२२॥

तिथि त्रयोदशी फागुन आई ।

हर पूजा की बजत बधाई ॥२३॥

मणीकरण अरु घट्ट किदारा ।

हर पूजा का अधिक प्रचारा ॥२४॥

रात्रि जागरण करहैं नर नारी ।

कर उपवास रहें ब्रह्मचारी ॥२५॥

दो०—अंबाशंकर पिता ने,
सुत शंकर लिया साथ।
शंकर अर्चा के लिये,
जाय नवाया माथ ॥८॥

चौ०—शिव त्रयोदशी उत्सव भारा।
व्याप रहा सगरे संसारा ॥१॥
दयानन्द नूतन ब्रह्मचारी।
शिवपूजा हित व्याकुल भारी ॥२॥
क्षण क्षण काल कटे तिहिं ऐसे।
कल्प माहिं युग बीतत जैसे ॥३॥
जन वैदिक जिमि मख अभिलासु।
जन विवेकी जिमि ब्रह्मजिज्ञासु ॥४॥
तिमि श्रद्धा धन बटु धर ध्याना।
लगा करन पूजन बिधि नाना ॥५॥

अक्षत पुष्प सुगंध चढ़ाये।
पै धारा शिव शिर सिंचाये ॥६॥
निशा निशीथ भया जब काला।
सोइ गये जन जरठरु बाला ॥७॥
लगन बिना जागे नहिं कोई।
जिमि बिन अर्थ प्रीति नहि होई ॥८॥
कै जागे दुखिया दुःख त्रासु।
कै जागे कोउ ब्रह्मजिज्ञासु ॥९॥
कामी कुटिल कठोर सुचोरा।
जाग जाग करते जन भोरा ॥१०॥
लगन बिना जाग्रण नहिं होई।
लोक प्रसिद्ध कहत सब कोई ॥११॥
दयानन्द जागा कर योगा।
विविध विषय रस तज जग भोगा ॥१२॥
जासु निशा सोवत संसारी।

ता निशि में जागा ब्रह्मचारी ॥१३॥

विषय वासना ने जो मोहे ।

वे जन कल्प कल्प तक सोए ॥१४॥

शिव मन्दिर के सोए पुजारी ।

संत महंत अन्य मठ धारी ॥१५॥

सेठ महाजन सोवन लागे ।

विधिवश भाग बटुक के जागे ॥१६॥

दयानन्द तब जाग्रण कीना ।

तन् मन धन शिव को देदीना ॥१७॥

शिवपूजन मकरंद समाना ।

दयानन्द मन मधुप लुभाना ॥१८॥

मनहुं ब्रह्ममयि भई मति योगी ।

जनु मलयाचल लिपटा भोगी ॥१९॥

धारण ध्यान समाधी कीनी ।

मनोवृत्ति जड़मय करदीनी ॥२०॥

दैवगति दयानन्द जगाया ।
मूषक एक अचानक आया ॥२१॥

आखु आय शिवमौल विराजा ।
शिव शव तनु चिन्मय भयो राजा ॥२२॥

दयानन्द मन उपजी ऊहा ।
शिव शिर पै कस चढ़ गयो चूहा ॥२३॥

विश्व विधाता आदि निदाना ।
ताको जड़मय मिथ्या माना ॥२४॥

तर्क तरंग उठे मन ऐसे ।
उदधि मांह वीची भई जैसे ॥२५॥

संशय सागर भवनिधि पारा ।
सूझत जासु पार नहिं वारा ॥२६॥

हीन दशा भई बटुक विचारे ।
अस को जन जो पार उतारे ॥२७॥

दो०—ब्रह्मदाय दाता पिता,
धर्मशास्त्र की रीति ।
हियधर शंकरमूल ने,
पूछा पिता सप्रीति ॥९॥

चौ०—आदि मूल जगकर्त्ता जोई ।
मैंने शिव समझा था सोई ॥१॥
सो किहिं कारण ते जड़रूपा ।
कहो पिता यह कथा अनूपा ॥२॥
अंबाशंकर हर्षेउ भारी ।
सुत की बात लगी अति प्यारी ॥३॥
धर्म पुराणिक का व्याख्याना ।
सुतहिन दे प्रमाण विधि नाना ॥४॥
शिवपुराण में ऐसी गाथा ।
जगकर्त्ता जगदीश विधाता ॥५॥

ज्योति लिंग तनु धर वह आया ।
अद्भुत जगकर्त्ता की माया ॥६॥

तब से पूजन करते लिंगा ।
अंग बंग अरु देश कलिंगा ॥७॥

या में जड़मति करो न ताता ।
जगकर्ता शिवलिंग विधाता ॥८॥

बन ब्रह्मा सिरजन जो करता ।
बन बिष्णु जग को जो भरता ॥९॥

रुद्ररूप ह्वै करे संहारा ।
तनिक न यामें करो बिचारा ॥१०॥

देवत्रयी वेदन में गाई ।
यामें संशय करो न राई ॥ ११ ॥

सुनि बटु ने पितु की यह बानी ।
ग्रंथि पुनह शतगुनि उरझानी ॥१२॥

दो०—विनयकरी कर जोड़कर,
सूनू शंकरमूल।
पूज्य पिताजी क्षमहुं मोहि,
मिटी न मेरी भूल॥ १० ॥

चौं०—बन ब्रह्मा यदि विश्व उपाया।
क्षीर निधि कहु कहंते आया ॥१॥
जहां रहत कमला का कन्ता।
जहं विष्णु ऋषि मुनि कहं सन्ता ॥२॥
अंबाशंकर सुन अस शंका।
चकित भये सुन तर्क अतंका ॥३॥
यह निश्चय भया पितु मन माहीं।
मम सुत पुरुष सधारण नाहीं ॥४॥
कै यह ब्रह्मतनू के वेशा।
कै उतरेउ कोउ देव विशेषा ॥५॥
यह निश्चयकर यह जिय धारी।

आगम निगम पढ़े ब्रह्मचारी ॥६॥
यासक नाम निरुक्त पढ़ाके ।
कछुक धर्मपुस्तक समझाके ॥७॥
भये पिता असकर बड़भागी ।
विधिवश अन्य लगन उस लागी ॥८॥

दो०—वक्ता हो चहुंवेद का,
अथवा मिले महेश ।
बिना ज्ञान भये जीव के,
मिटें न पांच कलेश ॥ ११ ॥

चौ०—यह जिय धार भया निर्वेदा ।
तुच्छ भये भव निधि दुःख खेदा ॥१॥
आदि अंत पुन मध्य न जाको ।
पूरण ब्रह्म कहे श्रुति ताको ॥२॥
आदि अंत में वस्तु न जोई ।
मिथ्या रूप पिछानो सोई ॥३॥

मध्य विषे वह भाषत ऐसे ।
शुक्ति मांहि रूपा जग जैसे ॥४॥
रज्जु सर्प पुन भूमि दरारा ।
अथवा होय वार की धारा ॥५॥
इनमें अहि भासे जस क्रमते ।
तिम मिथ्या जग भाषत भ्रमते ॥६॥
इम चिन्तित बटु की मति जागी ।
प्रकट भई जनु अरणी आगी ॥७॥
दो०—पुन घटना ऐसी भई,
दैवचक्र गति नाल ।
भगनी मृत भई तासु फिर,
दिया निदर्शन काल ॥ १२ ॥
चौ०—रोग विशूचक मारक भारी ।
मनहुं रूप दूसर महामारी ॥१॥
जनु आ ग्राह ग्रसा तस प्रानु ।

मनहुं दैव यम भया प्रयानु ॥२॥
काल कराल कवर भई भगिनी।
जीवन आस दयानन्द भगनी॥ ॥
अश्रुपात गिरा विन्दु न एका।
दयानन्द उर तत्व विवेका ॥४॥
यह लखि बन्धु कहें निर्मोही।
क्या जाने शान्ति गति कोही ॥५॥
जिमि मृत लखि भया बुद्ध विवेका।
तिमि दयानन्द ईश गहि टेका ॥६॥
नष्ट भ्रष्ट होवे भव सारा।
तदपि दयानन्द रहत विकारा ॥७॥
पितु भ्राता यम धाम सिधाया।
तदपि दयानन्द व्यापी न माया ॥८॥
क्षण क्षण ध्यान धरे प्रभु सोई।
रोम २ व्यापा जग जोई ॥९॥

दो०—शंकरमूल विवाह हित,
कीना पिता बिचार ।
पुत्र ईषणा के बिना,
होय न जगत उधार ॥१३॥

चौ०—मुनि मुनीश सुरजन नर नारी ।
बंधन हेतु जगत् में चारी ॥१॥
लोकादिक ईषण मिल तीनों ।
विषय हेतु जिन परिणय कीनो ॥२॥
माया गुणमयी के सब बंधा ।
जिसमें होइ रहा जग अंधा ॥३॥
सो बंधन पिता चाहत डाला ।
समझ गया शंकर तत्काला ॥४॥
सुगतबुद्ध शंकर दयानन्दा ।
ऐहिक सुख तज भये अनन्दा ॥५॥
इन तिहुं दार ग्रहण नहिं कीना ।

विषय विषम तज अमृत लीना ॥६॥
पुरुषसिंह जो होहिं निराले ।
ते क्रम मारग में नहि चाले ॥७॥
क्रम क्रम से जन चढ़ें संसारी ।
पा संगत जो भए विकारी ॥८॥
पुरुष असंग सांख्य मत माहीं ।
ताको प्राकृत बंधन नाहीं ॥९॥
ग्रही बनी बन बने संन्यासा ।
या क्रम को तिहुं कीनी हांसी ॥१०॥
कूद चढ़ा नभ में हनुमंता ।
जानत सब सज्जन जन संता ॥११॥
गढ़ लंका जा कपि ने जारा ।
ब्रह्मचर्य्य व्रत था जिन धारा ॥१२॥
शंकर दयानन्द हनुमाना ।
ब्रह्मचर्य्य व्रत किये महाना ॥१३॥

ब्रह्मचर्य्य व्रत का परभाऊ।
दयानन्द भए श्रुति पथ नाहू ॥१४॥

दो०—ऋतु वसंत का काल जनु,
आया ग्रीषम काल।
जिसमें शंकरमूल ने,
मेटा मिथ्या जाल ॥१४॥

चौ०—दावानल बन बन में लागी।
कुसुमाकर श्री भई अभागी ॥१॥
पुष्प वाटिका जरने लागे।
पुष्प धनु तज सायक भागे ॥२॥
ब्रह्मचर्य्य से अस सरपंचा।
जिमि विरक्त तजे निखिल प्रपंचा ॥३॥
सुरभी नसा निदाघ डरपाए।
जनु सेवा लखि मुगल पलाए ॥४॥
क्षुद्र सरित सर सूखन लागे।

हीन कोष जिमि पुरुष अभागे ॥ ५ ॥
ढूढ़त शीत मिले कहुं नाहीं ।
सुखद शीत मिले हिमगिरि माहीं ॥६॥
शान्त शीत चाहत ब्रह्मचारी ।
शान्तमयी मति मन में धारी ॥ ७ ॥
शान्ति से गृहतज दियो ऐसे ।
सिद्धारथ तजे परिजन जैसे ॥ ८ ॥
दो०—नाम सिद्धपुर जासका,
सिद्ध रहें जिहिं माहिं ।
साधन सिद्धि योगहित,
दयानन्द गयो ताहिं ॥ १५ ॥
चौ०—साधु संत मिले बहु धर भेखा ।
योग योग्य कोउ एक न देखा ॥१॥
उदर भरन हित विचरें नाना ।
साधन योग्य मर्म नहिं जाना ॥२॥

तब दयानन्द अन्य मठ देखा ।

नीलकंठ जिहिं नाम विसेखा ॥३॥

नर नारी तिहिं पूजत ऐसे ।

वैदिकमत में निर्गुण जैसे ॥४॥

गुणातीत का करें धियाना ।

आंख मूंद होकर निसकामा ॥५॥

शिवतनु कह करें मृणमय पूजा ।

चिन्मय मृणमय देव न दूजा ॥६॥

मत शंकर का कर अध्यासा ।

मूरतपूजा करें प्रकासा ॥७॥

जब देखा मठ में ब्रह्मचारी ।

चकित भये सगरे नर नारी ॥८॥

रुद्रभस्म न रुद्र गल माला ।

ऊर्ध त्रिपुंड तिलक नहिं भाला ॥९॥

वृषभ कंध अति भुजा विशाला ।

भाल विशाल ओढ़ि मृगछाला ॥१०॥
पुरुष अपूरब देखा जब ही ।
पूजा तज अभिमुख भये तब ही ॥११॥
कोई कहत तुम कौन उदासी ।
कौन देश जिहिं के तुम वासी ॥१२॥
महादेव नहिं पूज्य तुमारे ।
कहो कवन तुम मंत्र विचारे ॥१३॥

दो०—उत्तर दीना बटुक ने,
वैदिक तत्व विचार ।
एक देव पूजा करौं,
वैदिकमत अनुसार ॥१६॥

चौ०—एक अखण्ड ब्रह्म अविनासी ।
नित्य निरंजन घट घट वासी ॥१॥
निरावयव जिहिं रूप न रेखा ।
मो मत में सोई देव विशेषा ॥२॥

अज अविनाशी ब्रह्म अकाया।
व्यापे मोह न मिथ्या माया ॥३॥
जलधि मथन गल गर्ल न ताके।
रत नील पुन कंठ न वाके ॥४॥
ताको कहत त्रिनेत्र अज्ञानी।
शिवमहिमा जिनने नहिं जानी ॥५॥
व्याल माल गल गरल बतावें।
अस कह मिथ्या कथा सुनावें ॥६॥
इम कह अस गरजा ब्रह्मचारी।
जिमि श्रावण गरजे घट कारी ॥७॥
जनु व्यास ले पुन अवतारा।
ब्रह्मवाद का करे प्रचारा ॥८॥
मुनि कपिल जनु तनु धर आया।
एक असंग पुरुष बतलाया ॥९॥

दो०—अंबाशंकर पिता ने,
कीना और उपाय ।
सुत शंकर के ग्रहण हित,
दीने पुरुष पठाय ॥१७॥

चौ०—राजपुरुष पुन भेजे चारी ।
शंकरमूल कहां ब्रह्मचारी ॥१॥
जहां मिले तहां पकड़ लिआवो ।
या में तनिक विलम्ब न लावो ॥२॥
जा पकड़ा शिव-मन्दिर माहीं ।
कोउ रक्षक तहं को जहं नाहीं ॥३॥
आज्ञा पितु की शिर धर मानी ।
पितु भक्ति में जो बड़ ज्ञानी ॥४॥

दो०—दयानन्द को आ गहा,
राजपुरुष जो चार ।

पितु आज्ञा घर को चलो,
करो न तनिक विचार ॥१८॥

चौ०—तब बटु मन में करत विचारा।
शुभकारय में विघ्न अपारा ॥१॥
पितु आज्ञा पाई इत ओरा।
द्वितीय ओर ब्रह्मव्रत घोरा ॥२॥
कहं पालू पुन किसे तियागूं।
कठिन समस्या कहं मग लागूं ॥३॥
जो जग होगा हत्याकारी।
हो सुरापि अथवा व्यभिचारी ॥४॥
चौर कर्म चौथा व्रत त्यागी।
इन सम भगन व्रती भा अभागी ॥५॥
द्वितीय ओर पितु आज्ञा पालन।
इष्ट मान जिन कीनो लालन ॥६॥
मातु पिता ऋण जाय न टारा।

यह विचार भा जलध अपारा ॥७॥
चिन्तत रात बीत गई सारी ।
स्थिर मति शंकरमूल न धारी ॥८॥
दो०—जो जन दुविधा में फसे,
तिनके बिगरे काम ।
दुविधा में दोऊ गये,
माया मिली न राम ॥ १९ ॥
चौ०-शंकर ने दुबिधा तजि दीनी ।
एक ओर दृढ़ थिर मति कीनी ॥१॥
सावधान मति से उठ भागा ।
सोइ रहे कोउ एक न जागा ॥२॥
अंध निशा सोए कर्मचारी ।
संयम निशि जागा ब्रह्मचारी ॥३॥
जिमि राहु तजि शशि पुनि भ्राजा ।
तिमि दयानन्द अनन्द विराजा ॥४॥

सच्चिद्रूप विराजी जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ॥५॥

दो०-राज बड़ोदा में गयो,
ब्रह्मानन्द समीप।
आप ब्रह्म बन बैठिओ,
जिमि जन रंक महीप ॥२०॥

चौ०-उदभव जन्म स्थिति पुन नाशा।
चिदसत्ता जो करत प्रकाशा ॥१॥
जा को ब्रह्म कहे श्रुति चारी।
सो बन गया शंकर ब्रह्मचारी ॥२॥
शंकरमत का सुन उपदेशू।
जीव ब्रह्म भया निखिल क्लेशू ॥३॥
जिमि माया ने ब्रह्म भुलाया।
जीव रूप ह्वै कर जनु आया ॥४॥
शंकरमूल भया अति आतुर।

वैदिक मत का मिला न चातुर ॥५॥
मिथ्याज्ञान भुलाया ऐसे ।
राम भूल गये मृग पर जैसे ॥६॥
दच्य युधिष्ठिर अत्त भुलाना ।
विधी वाम क्या करे सियाना ॥७॥
भीम अनन्त अतुल बल ओजा ।
गृह विराट जो मिला न खोजा ॥८॥
तिमि दयानन्द गुप्त तनु धर के ।
गया ब्रह्मगृह जनु शंकर के ॥९॥
वर्ष त्रयोदश हो जब पूरा ।
पुन गरजेगा वैदिक शूरा ॥१०॥
दयानन्द घन गरजत वर्षा ।
षटत्रिंशत विक्रम के वर्षा ॥११॥
गर्जन धुन मुनि सुन निज काना ।
मुदित भया मन माहिं महाना ॥१२॥

आवत बहुत अतुल बलधारी ।
न्याय मीमांसा कोविद भारी ॥१३॥
आय सभा में थर थर थरकें ।
काम पड़े तब आंख न फरकें ॥१४॥
तत्त्वमसि यह वाक्य सुनाके ।
करें अखंड अर्थ समझा के ॥१५॥
विविध भांति के कर व्याख्याना ।
देयिं शास्त्र को मान महाना ॥१६॥
जीव ईश में भेद न थोरा ।
लखे सो पशु यह वेद ढंढोरा ॥१७॥
इस विधि कहें अद्वैत कहानी ।
शंकरमत के जो अभिमानी ॥१८॥
दयानन्द पूछत अस भयेऊ ।
कौन वेद तुमरा मत कहेऊ ॥१९॥
ऋग्यजुसाम अथर्वण माहीं ।

एक अद्वैत मिला कहुं नाहीं ॥२०॥

यदि अद्वैत ने सृष्टि उपाई
प्राकृत कहो कहां ते आई ॥२१॥

ब्रह्म विवर्त भया यदि आपे ।
फिर माया तस काह न व्यापे ॥२२॥

रज्जु सर्प अरु भूमि दरारा ।
दिये निदर्शन विविध प्रकारा ॥२३॥

विन अज्ञान न होइ अध्यासा ।
ता विन मिथ्या बने न भासा ॥२४॥

या ते मायावाद बताया ।
मत अद्वैत ने भाख सुनाया ॥२५॥

या विध पढ़ माया मत वादा ।
दयानन्द ढिग करें विवादा ॥२६॥

कोउ कहे एक ब्रह्म अनादि ।
अन्य कहें षट् कहें अनादि ॥२७॥

इत्यादि माया मत गाथा ।
जाने को बिनु संसृति नाथा ॥२८॥
अघटन घटन माया इक भाखी ।
या विध की बहु देते साखी ॥२९॥
दयानन्द जब पूछें वेदा ।
याका कोउ न जानत भेदा ॥३०॥
तब सब मूक होहिं जन ऐसे ।
जड़ पषाड़मय मूरत जैसे ॥३१॥
स्वामि केशवानन्द उदासी ।
तां अवसर जो अन्तेवासी ॥३२॥
गया बृद्ध परिकर भटमानी ।
दयानन्द यह बात बखानी ॥३३॥
का तुम ऋग् यजु में कोउ एका ।
पढ़ा गुरू मुख सहित विवेका ॥३४॥
तब केशव ने उत्तर दीना ।

पढ़ ग्रन्थ हम बहुत नवीना ॥३५॥
अन्य निरमले साधु विवेकी ।
अद्वैतवाद में जनु अभिषेकी ॥३६॥
पंचीकरण करें वह ऐसे ।
व्याससूत्र में भाखा जैसे ॥३७॥
सब की गति मति स्वामी जाने ।
एक वेद तज अन्य न माने ॥३८॥
वेद विषय में सब जन ऐसे ।
शाक वणिक मणिगुण कहे जैसे ॥३९॥
वेद विषय का पण्डित ऐसे ।
रात अमावस दीधति जैसे ॥४०॥
वेदधर्म कहीं मिले न खोजा ।
म्लेच्छराज में जिमि द्विज ओजा ॥४१॥
पा ज्योति जिमि बुद्ध विराजा ।
तिमि दयानन्द ब्रह्म तनु भ्राजा ॥४२॥

दो०—जाके हस्तामलक वत्,
निगमागम को ज्ञान ।
दयानन्द बिन अन्य नहिं,
यह सांची जिय जान ॥२१॥
चौ०—योगसिद्धि अरु अनहद नादू ।
जो जानत सब वाद विवादू ॥१॥
जिन मिथ्यामत कबहुं न भाया ।
मिथ्या मोह न व्यापी माया ॥२॥
सो भूला अहंब्रह्म विज्ञाना ।
मुनि मन यह आश्चर्य्य महाना ॥३॥
अथवा बालचरित की लीला ।
अर्जुन भीम अतुल बलशीला ॥४॥
धनु निशंग सन्धान न जाने ।
काल पाय भये निपुन सियाने ॥५॥
तिम दयानन्द सुशील सुकर्मा ।

बाल समय भया ब्रह्म अधर्मा ॥६॥

कहत आपको ब्रह्म अकर्ता ।
निखिल विश्व संसृति जो भर्ता ॥७॥

जो जन्मे नहिं मरे अनादि ।
ताको अहंब्रह्म कहे सादि ॥८॥

अणु समान जाकी गति भाखी ।
सो कह मैं त्रिभुवन को साखी ॥९॥

ईषण त्रय बांधा जो जीवा ।
सो अपने को कहे असीवा ॥१०॥

ये कथनी मुनि मन में ऐसी ।
मिथ्या कथा कृष्ण की जैसी ॥११॥

नित्य शुद्ध सत चित आनन्दा ।
मातु गोद भया बालमुकुन्दा ॥ १२ ॥

कहिं मुख माहिं विराट दिखाया ।
शुद्ध ब्रह्म जन्मा धर काया ॥१३॥

मुख भीतर हिम पर्वत नाना ।
कहीं अगाध पयोधि महाना ॥ १४ ॥
इत्यादि महिमा बतलावें ।
गीता की साखी दिखलावें ॥ १५ ॥
इस विधि कथा कहें निज जी की
मुनि मन में भाषे अति फीकी ॥ १६ ॥
गिरातीत जो ब्रह्म बताया ।
सो मानुष तनु धर किम आया ॥ १७ ॥
ईश विषे दयानन्द प्रबीना ।
तदपि भेद मतवाद न चीना ॥ १८ ॥
मनहुं केन में जीव भुलाया ।
यत्न कथा का मर्म न पाया ॥ १९ ॥

दो०—पुरी बनारस धाम की,
देवी दिव्य स्वरूप ।

दयानन्द की लगन का,
जिन दीना पता अनूप ॥२२॥

चौ०—नगर बनारस की कोउ बाई ।
मनहुं सरस्वती तनु धर आई ॥ १ ॥
यक्ष लक्ष दयानन्दहिं भाखा ।
भया वही जो विधि रचि राखा ॥ २ ॥
जिहिं का मर्म न अग्नि पावा ।
जो न सका लघु तृणहिं जलावा ॥ ३ ॥
पुन धाया वायु कर वेगा ।
सह न सका अपना उद्वेगा ॥ ४ ॥
तृणहिं उड़ाय सका न समीरा ।
को जाने उसको विन धीरा ॥ ५ ॥
तीसर देव इन्द्र जस नामा ।
जो जाना चहे ब्रह्म अनामा ॥ ६ ॥
विद्या हैमवती तनु धरके ।

गई समीप वासव ? र वरके ॥ ७ ॥
तिमि बाई शंकर पर बोधा ।
जिहिं ते शंकर भया सुबोधा ॥ ८ ॥
नदी नर्मदा तट पर नाना ।
पण्डित मण्डल रहत महाना ॥ ९ ॥
परमानन्द चिदाश्रम नामी ।
वहां वसें योगी निषकामी ॥ १० ॥
अन्य सच्चिदानन्द सुनामा ।
कामसस्य जहिं हृदउ न जामा ॥ ११ ॥
यह संदेश दीन उस बाई ।
दयानन्द मन मोद बढ़ाई ॥ १२ ॥

दो०—दयानन्द मन हर्षेउ,
सुन बाई की बात ।
जिमि शूरा सुन रण कथा,
नाहि समावे गात ॥ २३ ॥

चौ०—तक्षशिला जनु पाणिनि धाया ।
सारनाथ जिमि गौतम आया ॥ १ ॥
तिमि दयानन्द भया उत्साहू ।
ज नु जन रंक मिला कोउ राऊ ॥ २ ॥
नाम जासु चाणौद कल्याणी ।
मनहुं रचा पुरुषारद वाणी ॥ ३ ॥
जनु काशी नूतनु निर्माके ।
आप बसा शिवशंभु आके ॥ ४ ॥
वेदधुनि वटु करें विशाला ।
मनहुं रची विधि ने मखशाला ॥ ५ ॥
द्वैताद्वैतविशिष्ट विशुद्धा ।
भेदाभेद में परम प्रबुद्धा ॥ ६ ॥
निर्विशेष निर्गुण का ध्याता ।
जनु जन गौतम रचा विधाता ॥ ७ ॥
तर्कशास्त्र में भयो विवेकी ।

निगमागम पूरण अभिषेकी ॥ ८ ॥
चौदश विद्या करतल कीनी।
अन्य निखिल माया तज दीनी ॥ ९ ॥
परमानन्द कहें तिहिं लोगू।
परमहंस उपनाम सुयोगू ॥ १० ॥
दो०—कल्याणी चाड़ौद में,
शंकर कियो विचार।
जीव ब्रह्म के भेद का,
लखों तत्व निर्धार ॥२४॥
चौ०—धर्मराज सुत ने जो कीना।
मत अद्वैत का ग्रन्थ नवीना ॥ १ ॥
वेद अंत परिभाषा नामी।
पढ़न लगे तिहिं दयानन्द स्वामी ॥ २ ॥
सार वेदान्त अन्य लघु ग्रन्था।
वाद अद्वैत जर्जरी कन्था ॥ ३ ॥

दयानन्द मन में अस लागी।
सिद्धारथ जिमि माया त्यागी ॥ ४ ॥
नूतन ग्रन्थ लगें तिहिं ऐसे।
सुगत बुद्ध को परिजन जैसे ॥ ५ ॥
तज नवीन मत की परिपाटी।
आय पड़ा वैदिकमत घाटी ॥ ६ ॥
जिससे पार होई कोई शूरा।
यम नियमों में होय जो पूरा ॥ ७ ॥
यह जिय धार तजे भ्रम दोऊ।
गृही बन बन फिरा न सोऊ ॥ ८ ॥
एक वेद का भया जिज्ञासु।
अन्य ईषणा त्रय तज आसू ॥ ९ ॥
भीषण व्रत धारा तिहिं ऐसे।
पिता पितामह भीषम जैसे ॥ १० ॥
ऋग्यजुसामअथर्वण हेतु।

शंकर बना वेदनिधि सेतु ॥ ११ ॥

जो कहते आतुर संन्यासा ।

दयानन्द लियो होय उदासा ॥ १२ ॥

ते मतिमन्द मूल नहिं जाने ।

शंकरमूल न मूल पछाने ॥ १३ ॥

हो आतुर जो बनें संन्यासी ।

ताकी जनता करे उपहासी ॥ १४ ॥

दार मरी अरु संपत नासी ।

मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी ॥ १५ ॥

येह उक्ति जिनके संग लागी ।

ते जन पामर परम अभागी ॥ १६ ॥

दयानन्द ईश्वर दया प्रेरा ।

पूरण का पूरण भया चेरा ॥ १७ ॥

दो०—नदी नर्मदा तट विषे,

विचरे एक अतीत ।

[illegible] न शीत ॥२५॥

चौ०—द्वन्द्वातीत विवेकी स्वामी।

निगमागम पथ का अनुगामी ॥ १ ॥

घोर तपस्वी महा विवेकी।

योग पाय जनु भया अभिषेकी ॥ २ ॥

दत्तात्रेय जनु फिर तनु धारा।

रहत निखिल भव भाव विकारा ॥ ३ ॥

मोह महातम जिहिं लख भागा।

वैनतेय लख जनु गयो नागा ॥ ४ ॥

योगकर्म में पूरण ऐसे।

पूर रहा जलधि पै जैसे ॥ ५ ॥

धर्ममेघ जो पाय समाधी।

जानत मूल न आधी व्याधी ॥ ६ ॥

रेचक पूरक कुंभक करके।

योगीजन जनु जीया मरके ॥७॥
जनु पीयूष पी भयो अविनाशी ।
मेट दई भव की दुःख राशी ॥८॥
अष्टयोग संयम पुन तीना ।
अष्टसिद्धि में भयो प्रवीना ॥६॥
यथा नाम गुण तासु बखाने ।
पूर्णानन्द सभी जन जाने ॥१०॥
यह ख्याती जब सुनी ब्रह्मचारी ।
लगन लगी गुरु की अति भारी ॥११॥
जनु लखि भ्रमर पयोज परागा ।
उमग पड़ा अतिशय अनुरागा ॥१२॥
दयानन्द मन तिमि उमगाया ।
जनु चकोर पूरण शशि पाया ॥१३॥
दो०—दयानन्द ने जब लखा,
यति मस्करि कामन्द ।

भयो उद्वेग तिहिं मन विषे,
जिमि उदधि लखि चन्द ॥२६॥

चौ०—दुखित प्रजा जिमि मिला सुनाहू ।
जनु निर्धन जन पालिया साहू ॥१॥
जिमि प्यासा पियूष निधि पाके ।
गदगद होय रोम पुलकाके ॥२॥
तिमि दयानन्द रोम हर्षाये ।
पूरण निधि पूरण गुरु पाये ॥३॥

दो०—धूलि धूसर पद्म युग,
पकड़ लिये सह प्रेम ।
शुद्ध मलन के भेद का,
प्रेम न राखत नेम ॥ २७॥

चौ०—व्यास मुनि जनु जैमिनि पाया ।
जिमि शंकर ढिग मंडन आया ॥१॥

दयानन्द तिमि बनगया चेला।
ब्रह्म जीव का जनु भया मेला ॥१॥
छाड़ सहस विधि की कुटिलाई।
सूरदास जिमि भया हरि पाई ॥३॥
तिमि दयानन्द भया सुखसागर।
संसृति जाल तजा जिहिं बागुर ॥४॥
मोह निशा तज भया अतीता।
विपद समय ऋषि का अब बीता ॥५॥
पूरण ने पूरण करदीना।
मोह तिमिर सगरा हरलीना ॥६॥
दै दीक्षा त्रय ताप निवारे।
मोह निशा के मिटे जनु तारे ॥७॥
उदित भया गुरु ज्ञान दिनेशू।
काट दिये जिन पंच कलेशू ॥८॥
गुरु तक्षक जनु यूप तराशा।

वक्र टेढ़ तन मन का नाशा ॥९॥
सरल करे तत्तक घड़ घड़ के ।
पुन कहुं गिरे न ऊंचा चढ़ के ॥१०॥
पाहन पारस करि जनु डारा ।
शिल्पकार गुरु मिलगया भारा ॥११॥
हाथ सिलावट के पड़ी मूरत ।
काढ़ दई घड़ घड़ के सूरत ॥१२॥
महावीर जनु प्रतिमा भासे ।
देखत ही कायरता नाशे ॥१३॥
लोहकार गुरु कर गह लीना ।
अगन समान लोह तिन कीना ॥१४॥
सहस चोट तिन घड़ दिया लोहू ।
चूर किया माया मद मोहू ॥१५॥
दो०—नाम धरा गुरुदेव ने,
"य" के अर्थ विचार ।

दया कीन दयानन्द पै,
भवनिधि कीनो पार ॥२८॥

चौ०—वागधेनु सम पद जस आदू।
अंत अनन्द अवधि अवगाधू ॥१॥
सो दीना गुरुजी दया करके।
जलध दिया कूजे जनु भरके ॥२॥
दय-दाने से दे आकारा।
दयानन्द मूरत साकारा ॥३॥
रची गुरू जनु प्रतिमा सादि।
पढ़े वेद जो अगम अनादि ॥४॥
द्वितीय अर्थ "दय" का दिया ज्ञाना।
सो जाने जो होय सुजाना ॥५॥
तृतीय अर्थ हिंसा का राखा।
मुनि यह अर्थ अनूठा भाखा ॥६॥
"दुष्टदमन" दयानन्द बनाया।

दासरथी जनु तनु धर आया ॥७॥
राक्षस मार वेद मग शोधा ।
भीम तनू धारा कर क्रोधा ॥८॥
तुरीय अर्थ राखा निज धर्मा ।
उन जीवित किये शर्मा वर्मा ॥९॥
दया अर्थ इत्यादि अनेका ।
जाने सो जिहिं हृदय विवेका ॥१०॥

दो०—स्वामि पूर्णानन्दजी,
नाम धरा दयानन्द ।
षोड़श कल पा उदित भा,
मनहुं कातिकी चन्द ॥२९॥

चौ०—ब्रन दीधिति जनु दयानन्द आया ।
मेटि मोह निशा घन माया ॥१॥
सुजन चकोर बहुत हर्षाने ।
खल दल हिम पा अति कुंभिलाने ॥२॥

निशा तुषार पाय परितापू ।
दग्ध भये जनु करणे जापू ॥३॥
मूरत देव मुदित भये सारे ।
रुदन करन लगे पुरुष पुजारे ॥४॥
ग्रहपूजा जीवी पर भागी ।
दीन दुखी भये पुरुष अभागी ॥५॥
ऋग् यजु साम अथर्वण धारी ।
पढ़ें योग्यता से नर नारी ॥६॥
वर्णव्यवस्था ऐसी कीनी ।
जात पात प्रभुता हर लीनी ॥७॥
चार वेद इतिहास पुराना ।
दयानन्द विद्या निधि नाना ॥८॥
सर्व देव जन विद्या जाने ।
भूत प्रेत की गती न माने ॥९॥
चौदश विद्या का जनु केतु ।

जग जलधि तारन का हेतु ॥१०॥
निष्कलंक जनु भया अवतारी ।
भारत भार हरे जिन चारी ॥११॥
प्रथम भार वर्णेतर धर्मा ।
द्वितीय भार भये पुरुष अकर्मा ॥१२॥
तृतीय भार जन म्लेच्छ प्रभाऊ ।
मात पिता गुरु गिने न काऊ ॥१३॥
तुरीय भार पामर व्यभिचारी ।
तजहं वेदमग मिथ्याचारी ॥१४॥
चार भार ऋषि ने हरलीने ।
याते निष्कलंक मुनि चीने ॥१५॥

दो०—पटियाला शुभ राज्य में, बरनाला जिहि नाम ।
तिहिं में मुनि प्रस्तुत कियो, महाकाव्य को काम ॥१॥
संवत ग्रह विधु विक्रमी, एक अशीती जान ।
शासन श्री भूपेन्द्र हरि, पाय कथा यह ज्ञान ॥२॥

इति श्रीमदार्य्यमुनि कृते दयानन्द
चरित मानसे महाकाव्ये जन्मकाण्डं
समाप्तम्